eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 03, Issue 03, March 2024

न्यायिक सक्रियता एवं श्रमिक कल्याण

पूजा शुक्ला[1]
असिस्टेंट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान विभाग, भगवानदीन कन्या पीजी कॉलेज लखीमपुर खीरी[1]

Received: 15 March 2024 Accepted & Reviewed: 25 March 2024, Published : 31 March 2024

Abstract

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21 विचाराधीन के लिए भी इस तरह से लागू होता है जिस तरह से अन्य स्वतंत्र व्यक्तियों के लिए, संविधान का प्रत्येक प्रावधान चाहे वह मतदान का अधिकार हो या गरिमा पूर्ण जीवन जीने का अच्छा स्वास्थ्य शिक्षा या अन्य कोई अधिकार सभी को समान रूप से उक्त अधिकारों के उपभोग का अधिकार है सामान्य व्यक्तियों की तरह ही विचाराधीन कैदी भी अपने शिक्षा पूरी कर सकते हैं अच्छा स्वास्थ्य रख सकते हैं तथा उन्हें जल्द सुनवाई का भी अधिकार प्रदान किया गया है कारावास के दौरान उनके साथ किसी भी प्रकार का शोषण नहीं किया जा सकता ऐसी स्थिति में समय–समय पर न्यायालय ने विभिन्न जनहित याचिकाओं के माध्यम से ऐसे निर्णय सुनाए हैं जिन्होंने विचाराधीन कैदियों की स्थिति को सुधारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है जिसकी शुरुआत बिहार के हुसैनआरा खातून बनाम गृह सचिव बिहार राज्य वाद से हुई हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने कैदियों को मत देने का अधिकार भी प्रदान किया इससे एक विचाराधीन कैदी भी अन्य नागरिकों की तरह ही सरकार को चुनने में अपनी भूमिका निभा सकेगा ऐसे ही कुछ मामलों का वर्णन इस अध्याय के अंतर्गत किया जा रहा है जिनसे विचाराधीन कैदियों के समाजीकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ है और उन्हें एक उत्तम जीवन शैली अपने में मदद मिली है।

मुख्य शब्द– भारतीय संविधान, विभिन्न अनुच्छेद, न्यायिक सक्रियता एवं श्रमिक कल्याण।

Introduction

त्वरित सुनवाई आपराधिक न्याय की भावना है। यह निष्पक्ष सुनवाई का एक महत्वपूर्ण पहलू है जो न केवल पीड़ित के लिए बल्कि आरोपी के लिए भी मददगार है। यह न्याय के गर्भपात को रोकने में एक प्रमुख भूमिका निभाता है। किसी आरोपी को सिर्फ इस आधार पर त्वरित सुनवाई से इनकार नहीं किया जा सकता कि वह इसका दावा करने में विफल रहा। हुसैनारा खातून और अन्य यह एक ऐतिहासिक मामला है, जिसका फैसला 9 मार्च 1979 को हुआ, जिसने अनुच्छेद 21 की व्यापक परिभाषा प्रदान की और कहा कि त्वरित सुनवाई प्रत्येक नागरिक का मौलिक अधिकार है। यह सबसे लोकप्रिय मामला है जो भारत में कैदियों के मानवाधिकारों पर चर्चा करता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस बात से इंकार किया कि राज्य को न्याय प्रदान करने के लिए मुफ्त कानूनी सहायता और त्वरित सुनवाई की गारंटी देनी चाहिए।

1979 में इंडियन एक्सप्रेस अखबार में बिहार जेल में विचाराधीन कैदियों की हिरासत के बारे में एक लेख प्रकाशित हुआ था। इनमें से कुछ विचाराधीन कैदी लंबी अवधि, वास्तव में, अपनी वास्तविक हिरासत अवधि से भी अधिक समय तक जेल की सजा काट रहे थे। वकील पुष्पा कपिला हिंगोरानी लेख के पाठकों में से एक थीं और उन्होंने भारत के सर्वोच्च न्यायालय में जनहित याचिका (पीआईएल) के रूप में मामला दायर किया। यह भारत में जनहित याचिका का पहला मामला था और अधिवक्ता पुष्पा कपिला हिंगोरानी को 'भारत में जनहित याचिका की जननी' कहा जाता है।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 03, Issue 03, March 2024

वर्तमान मामला बंदी प्रत्यक्षीकरण याचिकाओं पर विचाराधीन कैदियों के अधिकारों और उनकी रिहाई से संबंधित था। बिहार के विचाराधीन कैदियों की ओर से वकील कपिला हिंगोरानी ने बंदी प्रत्यक्षीकरण की रिट याचिका दायर की थी। इससे बिहार राज्य में महिलाओं, बच्चों सहित बड़ी संख्या में लोगों की दयनीय स्थिति का पता चला है, जो कई वर्षों से हिरासत में हैं और मुकदमे की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इनमें से कई कैदियों पर छोटे–मोटे अपराधों का आरोप लगाया गया और उन्हें सामान्य से कई महीनों की जेल की सजा सुनाई गई। याचिका में कहा गया है कि छोटे–मोटे अपराध करने वाले विचाराधीन कैदी बिना मुकदमे के 5–10 साल से अधिक समय से जेल में सजा भुगत रहे हैं। ये लोग गरीब थे और जमानत देने में भी सक्षम नहीं थे। यह याचिका बिहार जेल के सभी कैदियों ने एक साथ दायर की थी. यह एक महिला अपराधी हुसैनारा खातून की ओर से सुप्रीम कोर्ट के समक्ष दायर किया गया था। उन्हें हिरासत में लिया गया और चार साल तक 'सुरक्षात्मक हिरासत' में रखा गया, भले ही भारत सरकार ने बांग्लादेश से आने वाले विदेशी अधिनियम के तहत हिरासत में लिए गए कैदियों को जमानत पर रिहा करने के सीधे आदेश जारी किए थे।

समस्याएँ

- यदि त्वरित सुनवाई के अधिकार को अनुच्छेद 21 का हिस्सा माना जाए।
- क्या निःशुल्क कानूनी सहायता का प्रावधान कानून द्वारा लागू किया जा सकता है?

आवेदन इस आधार पर खारिज कर दिया गया कि याचिकाकर्ता विचाराधीन कैदी हैं और उन पर कोई मुकदमा नहीं चल रहा है। इनमें से कई कैदियों पर छोटे–मोटे अपराधों का आरोप लगाया गया और उन्हें सामान्य से कई महीनों की जेल की सजा सुनाई गई। उनके दुःख का एक अन्य कारण उनकी गरीबी थी, जिसके कारण उनके लिए जमानत प्राप्त करना भी असंभव हो गया था।

जवाबी हलफनामे में, उत्तरदाताओं ने कहा कि मामले में कई विचाराधीन कैदी, जो यहां अपील नहीं करते हैं, पटना सेंट्रल जेल, मुजफ्फरपुर सेंट्रल जेल और रांची सेंट्रल जेल में बंद हैं, उनकी रिहाई से पहले उन्हें बार–बार पेश किया गया है। मजिस्ट्रेट, और इस प्रकार मजिस्ट्रेटों द्वारा उन्हें बार–बार न्यायिक हिरासत में भेजा गया। हालाँकि, न्यायालय ने कथन को सत्य नहीं पाया क्योंकि उत्तरदाता हिरासत की तारीखें निर्धारित नहीं कर सके। इसके अलावा, लंबित मामलों की संख्या में वृद्धि को उचित ठहराने के लिए, उत्तरदाताओं ने कहा कि आम तौर पर मामलों में जांच रोकनी पड़ती है क्योंकि विशेषज्ञों से राय प्राप्त करने में बाधा आती है। हालाँकि, न्यायालय ने इस तर्क को इस आधार पर खारिज कर दिया कि राज्य इसके लिए विभिन्न तरीकों का उपयोग कर सकता है।

कोर्ट ने उन सभी विचाराधीन कैदियों को रिहा करने का आदेश दिया जिनके नाम वकील पुष्पा कपिला हिंगोरानी द्वारा प्रस्तुत सूची में थे। न्यायालय ने यह भी कहा कि लंबे समय तक हिरासत में रखना गैरकानूनी होगा और अनुच्छेद 21 के तहत उनके मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होगा क्योंकि इन कैदियों को उससे अधिक समय तक हिरासत में रखा जाता है, जो उन्हें मुकदमा चलाने और दोषी ठहराए जाने पर दी जा सकती थी। इस माननीय न्यायालय का एक अन्य आदेश यह था कि जमानती अपराधों के आरोपी विचाराधीन कैदियों को मजिस्ट्रेट के समक्ष उनके मुकदमे के आने वाले दिनों में राज्य द्वारा मुफ्त कानूनी सहायता दी जाए। इसका उद्देश्य यह था कि गरीब विचाराधीन कैदी भी जमानत के लिए आवेदन कर सकें और इससे यह भी सुनिश्चित हो सके कि त्वरित सुनवाई का लक्ष्य हासिल किया जा सके। सुप्रीम कोर्ट ने राज्य सरकार और उच्च न्यायालय को विवरण प्रदान करने का भी आदेश दिया, जिसमें बिहार राज्य में मजिस्ट्रेट की अदालतों और सत्र अदालतों के स्थान के सभी कारक और प्रत्येक अदालत में लंबित मामलों की कुल संख्या शामिल है। 31 दिसंबर 1978। यदि उक्त मामला छह महीने से अधिक समय से लंबित है, तो उन्हें उन कारणों को भी बताना होगा जो मामलों के निपटान में देरी

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 03, Issue 03, March 2024

में शामिल हैं। न्याय में देरी न्याय न मिलने के समान है। ये मामले प्रत्येक नागरिक के लिए त्वरित सुनवाई के अधिकार की आवश्यकता के महत्व को साबित और बल देते हैं। ऐसे कई उदाहरण हैं जहां दोषी ठहराया गया व्यक्ति तथ्यात्मक रूप से आरोपों से निर्दोष है। ऐसी प्रक्रियात्मक त्रुटियाँ थीं जो दोषी व्यक्ति के अधिकारों का उल्लंघन करती थीं। कश्मीर के एक शॉल व्यापारी मोहम्मद अली भट को 1996 में दिल्ली पुलिस ने गिरफ्तार किया था और लाजपत नगर विस्फोट और समलेठी विस्फोट मामले के आरोपी के रूप में जेल में डाल दिया था। हाल ही में, राजस्थान उच्च न्यायालय ने उन्हें "दोषी नहीं" घोषित किया। एक और उदाहरण जहां भट ने हमारे सुस्त न्याय के कारण अपने जीवन के 23 साल एक ऐसे अपराध के लिए जेल में बिताए जो उसने कभी नहीं किया था। भारतीय जेलों के आंकड़े बताते हैं कि 76.1 प्रतिशत कैदी विचाराधीन हैं, जो अपराध के लिए दोषी पाए बिना ही जेल में अपना समय बिता रहे हैं। भले ही उन्हें जमानत की पेशकश की जाती है, लेकिन अधिकांश बेहद गरीब नागरिक होने के कारण जमानत शुल्क वहन नहीं कर सकते। जेल में बिताया गया समय न केवल उनकी स्वतंत्रता पर प्रतिबंध है, बल्कि रिहाई के बाद भी उनके जीवन पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ता है क्योंकि समाज एक विचाराधीन कैदी और एक दोषी के बीच कोई अंतर नहीं देखता है।

हुसैनारा खातून बनाम बिहार राज्य का मामला देश की न्याय प्रणाली की खामियों को उजागर करता है। यद्यपि त्वरित सुनवाई का अधिकार एक मौलिक अधिकार है जैसा कि हमारे संविधान में वर्णित है, यह मामला उसी के घोर उल्लंघन पर जोर देता है, जहां विचाराधीन कैदियों को लंबी अवधि की कारावास की सजा केवल इसलिए भुगतनी पड़ी क्योंकि अदालतों के पास उन्हें बरी करने का समय नहीं था। उन्हें उनकी उचित सजा दो। कुछ कैदी दोषी भी नहीं थे, फिर भी उन्हें रिहा नहीं किया गया और बुनियादी मानवाधिकारों का उल्लंघन करते हुए सलाखों के पीछे रखा गया। इसके अलावा, भारत में मौजूद जमानत प्रणाली उन गरीब लोगों के प्रति अनुचित है जो कानूनी कार्रवाई का खर्च वहन करने में असमर्थ हैं। जो कानूनी प्रणाली देश के गरीबों को न्याय सुनिश्चित नहीं कर सकती, उसे निष्पक्ष एवं उचित प्रणाली नहीं कहा जा सकता।मामले के बाद से लगभग 40,000 विचाराधीन कैदियों को रिहा किया गया, जो दर्शाता है कि यदि कोई व्यक्ति देश के कल्याण के लिए प्रतिबद्ध है, तो वह ऐसा कर सकता है और व्यापक परिणाम देख सकता है। एडवोकेट पुष्पा कपिला हिंगोरानी जैसे और अधिक वकीलों की आवश्यकता है ताकि जरूरतमंदों और गरीबों को अपनी आवाज उठाने पर समर्थन मिल सके और प्रत्येक नागरिक को कानून के तहत उसे प्रदान किए गए अधिकारों के बारे में अच्छी तरह से पता होना चाहिए क्योंकि कानून उनकी मदद करता है जो अपने अधिकारों के प्रति सजग हैं, उनकी नहीं जो इसकी अनदेखी करते हैं। इस मामले में न्यायालय ने मुख्य रूप से दो अहम फैसले लिए

- पहला त्वरित सुनवाई प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है।
- दूसरा गरीब एवं वंचित लोगों को कानूनी सहायता प्रदान की जानी चाहिए

सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन 1978।[2]

सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन मामले में याचिकाकर्ता, जो वर्तमान में मौत की सजा का सामना कर रहा है, ने इस न्यायालय के न्यायाधीशों में से एक को एक पत्र के माध्यम से सूचित किया, जिसमें एक जेल वार्डर द्वारा दूसरे कैदी पर अत्याचार करने का आरोप लगाया गया था, इस यातना का कथित उद्देश्य पीड़ित से उसके आने वाले रिश्तेदारों के माध्यम से पैसे ऐंठना था। इसके बाद, पत्र की सामग्री को न्यायालय द्वारा बंदी प्रत्यक्षीकरण कार्यवाही में बदल दिया गया। जवाब में, न्यायालय ने राज्य और संबंधित अधिकारियों को सूचित किया। इसके अतिरिक्त, न्यायालय ने न्याय मित्र नियुक्त करते हुए उन्हें जेल का दौरा करने, कैदी से बातचीत करने, प्रासंगिक दस्तावेजों की समीक्षा करने और आवश्यक गवाहों का साक्षात्कार करने का अधिकार दिया। इस उपाय का उद्देश्य न्याय मित्र को आसपास की परिस्थितियों और घटनाओं के क्रम की व्यापक समझ प्रदान करना था। जेल का दौरा

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 03, Issue 03, March 2024

करने और गवाहों की जांच करने पर, एमिकस क्यूरी ने एक रिपोर्ट प्रस्तुत की। रिपोर्ट से पता चला कि उस क्षेत्र में रॉड घुसेड़ने के कारण कैदी को गंभीर गुदा चोटें आईं, जिसके परिणामस्वरूप अमानवीय यातना दी गई। रिपोर्ट में यह भी कहा गया कि लगातार रक्तस्राव के कारण कैदी को पहले जेल अस्पताल और बाद में इरविन अस्पताल में स्थानांतरित किया गया था। इसके अलावा, रिपोर्ट में गुदा चोटों के लिए कैदी के स्पष्टीकरण पर प्रकाश डाला गया, जिसके लिए वार्डर द्वारा पैसे की मांग को जिम्मेदार ठहराया गया। रिपोर्ट में आगे संकेत दिया गया कि विभागीय अधिकारियों ने अपराध को छुपाने का प्रयास किया था। यह कथित तौर पर कैदी और जेल डॉक्टर को डराने–धमकाने और खुद को लगी चोट या बवासीर जैसी स्थिति जैसे वैकल्पिक स्पष्टीकरण पेश करके हासिल किया गया था।

समस्याएँ

- क्या सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन मामले में सुप्रीम कोर्ट को किसी दोषी की याचिका पर विचार करने का अधिकार है।
- क्या अनुच्छेद 14,19,21 के तहत दोषी को मौलिक अधिकार प्राप्त थे।
- क्या जेल अधिनियम, 1894 की धारा 30(2) और धारा 56, भारत के संविधान के अनुच्छेद 14,21 का उल्लंघन है।
- जेल अधिनियम, 1894 के भविष्य के बारे में संशोधन और सुधारों से संबंधित प्रश्न उठाए गए

सुनील बत्रा मामले में लागू कानून और प्रावधान

भारत का संविधान, 1950, अनुच्छेद 32 जेल में एक कैदी के साथ दुर्व्यवहार के आरोप यातना की घटनाओं को न्यायालय के ध्यान में लाया गया कैदी की भलाई की रक्षा करने और हस्तक्षेप करने के लिए न्यायालय का अधिकार और कर्तव्य। जेल अधिनियम 1894, धारा 27, 29 और 61 और पंजाब जेल मैनुअल, पैराग्राफ 41, 47, 49 और 53 एकांत कारावास का कार्यान्वयन, कैदियों से विशेषाधिकार और सुविधाएं वापस लेना, ऐसे कार्य सत्र न्यायाधीश द्वारा समीक्षा के अधीन हैं, जेल मैनुअल कैदियों के लिए सुलभ होना, आधिकारिक और गैर–आधिकारिक दोनों आगंतुकों को जेलों का दौरा करने की अनुमति जेलों में शिकायत बक्से की शुरूआत और शिकायतों के जवाब में सत्र न्यायाधीशों द्वारा बाद की कार्रवाई, उच्च न्यायालय को नियमित रिपोर्ट प्रस्तुत करने की आवश्यकता के लिए सिफारिशें जेल प्रबंधन और प्रक्रियात्मक सुधार। कानूनी सहायता– कैदियों को निःशुल्क कानूनी सहायता उपलब्ध कराने की आवश्यकता।

सुनील बत्रा के मामले में याचिकाकर्ता ने तर्क दिया कि जेल अधिनियम 1894 की धारा 30(2) जेल अधिकारियों को किसी कैदी को मौत की सजा (चाहे लंबित अपील हो या अभी तक निर्णायक या अंतिम नहीं) के तहत एकांत कारावास में डालने का अधिकार नहीं देती है। याचिकाकर्ता ने दावा किया कि धारा 30 भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करती है। जेल मैनुअल में शत्रुतापूर्ण या सुरक्षित समझे जाने वाले कैदियों के साथ व्यवहार करने के लिए विशिष्ट दिशानिर्देशों का अभाव है, जिससे व्यक्तियों को एकान्त अलगाव में कैद करने का निर्णय जेल अधिकारियों के विवेक पर छोड़ दिया जाता है, जिससे संभावित असमानता पैदा होती है। इसके अलावा, सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन मामले में याचिकाकर्ता ने तर्क दिया कि भले ही एक दोषी के रूप में उसके मौलिक अधिकार प्रतिबंधित हैं, लेकिन वे पूरी तरह से समाप्त नहीं हुए हैं। उन्होंने कहा कि उन्हें संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त सुरक्षा से वंचित नहीं किया जा सकता है , क्योंकि अनुच्छेद 21 में "जीवन" शब्द का अर्थ केवल भौतिक अस्तित्व से कहीं अधिक है।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 03, Issue 03, March 2024

सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन मामले में प्रतिवादी ने तर्क दिया कि वैध कारावास में कुछ मौलिक अधिकारों में कटौती शामिल है, यह प्रतिबंध स्वतंत्र नागरिकों के बजाय जेल में बंद व्यक्तियों पर लागू होता है। प्रतिवादी ने इस बात पर जोर दिया कि जेल मैनुअल और विनियमों के लिए ऐसी सीमाएं लगाने की आवश्यकता है।

प्रतिवादी ने तर्क दिया कि एकांत कारावास, मौत की सजा पाए दोषी व्यक्तियों को खुद को नुकसान पहुंचाने, आत्महत्या करने, दूसरों को नुकसान पहुंचाने या निर्दिष्ट दिन पर फांसी से बचने का प्रयास करने से रोकता है।

जेल अधिनियम 1894 की धारा 30(2) के संबंध में, प्रतिवादी ने कहा कि यह जेल अनुशासन बनाए रखने के लिए एकांत कारावास को आवश्यक बताता है। इसलिए इसके लागू होने को अनुच्छेद 14 का उल्लंघन नहीं माना जा सकता। इसके अलावा, सुनील बत्रा मामले में प्रतिवादी ने जेल अधिनियम की धारा 46 का हवाला देते हुए याचिकाकर्ता के खिलाफ की गई कार्रवाई को उचित ठहराया, जो अधीक्षक को कैदियों का निरीक्षण करने और आवश्यक होने पर उचित दंड लगाने का अधिकार देता है।

सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन मामले में फैसला

सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन मामले में सर्वोच्च न्यायालय की पीठ, जिसमें न्यायाधीश वी आर कृष्णा अय्यर, वाई वी चंद्रचूड़, फजलअली, सैयद मुर्तजा, पीएन भगवती शामिल थे, ने निम्नलिखित फैसला सुनाया–

सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन मामले में न्यायालय ने मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होने वाले मामलों को संबोधित करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 32 और 226 के तहत अपने अधिकार की पुष्टि की। इसने स्पष्ट किया कि यदि सजा के बाद भी कैदियों के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन होता है, तो उन्हें अदालत से संपर्क करने का अधिकार बरकरार रहेगा।

न्यायालय ने माना कि जेल अधिनियम की धारा 30(2) जेल अधिकारियों को कैदियों को एकांत कारावास में रखने की क्षमता प्रदान करती है। फिर भी, इस बात पर जोर दिया गया कि यह कैदियों को यातना देने की अनुमति नहीं देता है।

धारा 30(2) को अनुच्छेद 14 और 21 का उल्लंघन नहीं माना गया क्योंकि कभी–कभी कैदियों द्वारा खुद को या दूसरों को नुकसान पहुंचाने, आत्महत्या करने या फांसी से बचने की संभावना के कारण एकान्त कारावास आवश्यक हो सकता है। हालाँकि, सुनील बत्रा मामले में याचिकाकर्ता धारा 30(2) के दायरे में नहीं आता, क्योंकि उसकी मौत की सजा अभी तक अंतिम और निर्णायक नहीं थी। अदालत ने निर्देश दिया कि याचिकाकर्ता सुनील बत्रा को अदालत के अगले आदेश तक धारा 30(2) में उल्लिखित कारावास में नहीं रखा जाना चाहिए।

न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि दोषी ठहराए जाने और मौत की सजा सुनाए जाने के बावजूद, कैदियों को संविधान के अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत अधिकार प्राप्त मानव माना जाना चाहिए, जिसमें जीवन और स्वतंत्रता का अधिकार भी शामिल है। वे राज्य की दया पर निर्भर नहीं हैं और उनसे उनके मौलिक अधिकार नहीं छीने जाने चाहिए।

अधिनियम की धारा 56 के संबंध में, सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन में न्यायालय ने जेल अनुशासन के लिए संयम बरतने सहित आवश्यक सावधानी बरतने के अधीक्षक के अधिकार को स्वीकार किया। फिर भी, इस बात पर जोर दिया गया कि ऐसे उपाय केवल तभी उठाए जाने चाहिए जब स्थानीय सरकार या न्यायालय द्वारा

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 03, Issue 03, March 2024

अधिकृत किया जाए, अधिकारियों के विवेक पर नहीं। कोर्ट ने इस प्रावधान को अनुच्छेद 14 और 21 के अनुरूप माना ।

सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन मामले में न्यायालय ने राज्य द्वारा शीघ्र सुधार की आशा करते हुए जेलों में व्याप्त कठोर और असंवेदनशील स्थितियों पर भी चिंता व्यक्त की। न्यायालय ने जेल मैनुअल में पुराने प्रावधानों की आलोचना की और इस बात पर जोर दिया कि कैदियों के साथ अमानवीय व्यवहार उनके पुनर्वास और समाज में एकीकरण के लिए प्रतिकूल है।

कानून का शासन

संविधान के तहत काम करने वाले सर्वोच्च न्यायालय के पास मौलिक अधिकारों की रक्षा करने का अंतिम अधिकार है, जो कैदियों सहित सभी नागरिकों को यह सुरक्षा प्रदान करता है। अनुच्छेद 19 (स्वतंत्रता), 20 (किसी कार्य के लिए दोषसिद्धि के विरुद्ध संरक्षण, अपराध नहीं) और 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की सुरक्षा) सभी व्यक्तियों पर सार्वभौमिक रूप से लागू होते हैं। सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन ने भारत में कैदियों के अधिकारों के महत्वपूर्ण पहलुओं को संबोधित किया। न्यायालय ने यातना के शिकार कैदी की सुरक्षा के लिए हस्तक्षेप करते हुए अनुच्छेद 32 के तहत अपने अधिकार का दावा किया। एकान्त कारावास और विशेषाधिकारों से इनकार के उपयोग को स्वीकार करते हुए, इसने सत्र न्यायाधीशों द्वारा न्यायिक निरीक्षण को अनिवार्य कर दिया और आगंतुक पहुंच और शिकायत बक्से के माध्यम से पारदर्शिता को बढ़ावा दिया। मामले में कैदियों को मुफ्त कानूनी सहायता की आवश्यकता पर जोर दिया गया और जेल प्रबंधन में सुधार की सिफारिश की गई।

सुनील बत्रा मामले में न्यायालय ने कैदियों के मौलिक अधिकारों को बरकरार रखा, इस बात पर प्रकाश डाला कि दोषियों को भी कुछ सुरक्षा प्राप्त है। इस मामले ने दंड व्यवस्था के भीतर उचित प्रक्रिया और मानवीय व्यवहार पर जोर देते हुए कैदी कल्याण को बढ़ाने के लिए आधार तैयार किया।

खत्री और अन्य बनाम बिहार राज्य 1980 ।[(3)]

यह 1980 की बात है, जब स्वतंत्र भारत के लोगों ने सबसे वीभत्स घटनाओं में से एक देखी। भारतीय चेतना उस नृशंस भागलपुर ब्लाइंडिंग मामले से स्तब्ध थी जिसमें बिहार पुलिस ने लगभग 33 विचाराधीन कैदियों की आंखों में तेजाब डालकर उन्हें अंधा कर दिया था। इस घटना को भारतीय संविधान (अनुच्छेद 21) के दिल और आत्मा पर एक गंभीर आघात के रूप में पहचाना गया था। यह मानवाधिकारों और भारत के संविधान के उल्लंघन का गंभीर मामला था। इस मामले को न्यायिक अधिकारियों द्वारा महज एक आकस्मिक मामले के रूप में देखा जाता है। यह चकित करने वाला था कि उन्होंने भारतीय संविधान पर आधारित कानूनों की अनदेखी क्यों की। जबकि कुछ कैदियों को रिहा कर दिया गया, अन्य को बिना रिमांड के कारावास जारी रखने के लिए मजबूर किया गया। अंधे कैदियों को राजेंद्र प्रसाद नेत्र रोग संस्थान, नई दिल्ली में भर्ती कराया गया, जहां संस्थान के अधिकारियों ने घोषणा की कि पीड़ितों की दृष्टि स्थायी रूप से खराब हो गई है और यह क्षति किसी भी प्रकार के सर्जिकल या चिकित्सा उपचार से अपूरणीय है। इस बीच जिला एवं सत्र न्यायाधीश लापरवाह हो गये और मामले का निरीक्षण करने के लिए भागलपुर जेल नहीं गये।

भारत के माननीय सर्वोच्च न्यायालय में याचिकाओं की एक श्रृंखला दायर होने के बाद आशा की किरण एक नोटिस के साथ आई जिसमें कहा गया कि सभी याचिकाओं को खत्री एंड अदर्स बनाम बिहार राज्य की एकल पीठ द्वारा सामूहिक रूप से सुना जाना था।.

समस्याएँ

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 03, Issue 03, March 2024

1. क्या राज्य प्रत्येक जरूरतमंद व्यक्ति को निःशुल्क कानूनी सहायता प्रदान करने के लिए बाध्य है?
2. क्या राज्य ने पीड़ितों को राज्य द्वारा स्थापित प्रक्रिया से परे उनके जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार से वंचित किया है?
3. क्या पुलिस के घृणित कृत्य के लिए पीड़ितों को आर्थिक राहत देकर मुआवजा दिया जा सकता है?
4. क्या न्यायिक अधिकारियों ने जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता की रक्षा के अपने दायित्व का उल्लंघन किया है?

निःशुल्क कानूनी सहायता का अधिकार

न्यायमूर्ति पीएन भगवती ने इस बात पर प्रकाश डाला कि राज्य सरकारें वित्तीय या प्रशासनिक असमर्थता का हवाला देकर गरीब आरोपियों को मुफ्त कानूनी सहायता प्रदान करने के अपने संवैधानिक दायित्व से नहीं बच सकती हैं। यह अनुच्छेद 21 की गारंटी में निहित है और राज्य को मुकदमे सहित सभी चरणों में और जब आरोपी को पहली बार मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जाता है, तो निर्धन अभियुक्त को एक वकील प्रदान करना एक संवैधानिक आदेश के तहत है। किसी निर्धन अभियुक्त को सरकारी खर्च पर कानूनी सहायता दिए बिना आयोजित की गई सुनवाई खराब हो जाएगी और दोषसिद्धि रद्द कर दी जाएगी। गरीबों और जरूरतमंदों को मुफ्त कानूनी सेवा प्रदान करना किसी भी उचित, निष्पक्ष और उचित प्रक्रिया के लिए एक आवश्यक तत्व है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा यह नोट किया गया था कि हुसैनाराखातून बनाम गृह सचिव, बिहार राज्य के तहत अनुपात निर्णय को दोहराया गया था।

बुनियादी मानवाधिकारों के उल्लंघन के मुआवजे में मौद्रिक शर्तों में मुआवजा अन्यायपूर्ण कृत्य के लिए उपशामक के रूप में काम करेगा। यदि मुआवजा नहीं दिया गया, तो अनुच्छेद 21 शून्य हो जाएगा, ''रेत की एक मात्र रस्सी'' यह बताया गया था कि यदि न्यायालय की शक्ति को पारित करने तक सीमित कर दिया गया तो अनुच्छेद 21 अपनी महत्वपूर्ण सामग्री से वंचित हो जाएगा। अवैध हिरासत से रिहाई के आदेश पर सुप्रीम कोर्ट ने तर्क दिया:

"उन तरीकों में से एक जिससे उस अधिकार के उल्लंघन को उचित रूप से रोका जा सकता है और अनुच्छेद 21 के जनादेश का उचित अनुपालन सुनिश्चित किया जा सकता है, वह है इसके उल्लंघनकर्ताओं को मौद्रिक मुआवजे के भुगतान में शामिल करना। मौलिक अधिकारों के घोर उल्लंघन की ओर ले जाने वाले प्रशासनिक स्केलेरोसिस को न्यायपालिका द्वारा अपनाए जाने वाले किसी अन्य तरीके से ठीक नहीं किया जा सकता है। मुआवजे का अधिकार उन साधनों के गैरकानूनी कृत्यों के लिए कुछ उपशामक है जो सार्वजनिक हित के नाम पर कार्य करते हैं और जो उनकी सुरक्षा के लिए राज्य की शक्तियों को ढाल के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इसलिए, राज्य को अपने अधिकारियों द्वारा याचिकाकर्ताओं के अधिकारों को हुए नुकसान की भरपाई करनी चाहिए। इसका उन अधिकारियों के खिलाफ सहारा हो सकता है

न्यायिक अधिकारियों की अनियमितता पर

राज्य के न्यायिक अधिकारियों द्वारा जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार की रक्षा करने के दायित्व का उल्लंघन किया गया क्योंकि मामले की जांच से पता चला कि सत्र और जिला न्यायाधीश द्वारा किसी भी समय केंद्रीय जेल, भागलपुर का कोई निरीक्षण नहीं किया गया था। जो सर्वोच्च न्यायालय के नियमों का घोर उल्लंघन है।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 03, Issue 03, March 2024

भारत एक प्रतिकूल न्याय प्रणाली का पालन करता है, जहां आरोपी को उचित संदेह से परे दोषी माना जाता है, लेकिन यह मामला न्याय प्रणाली के मूल उद्देश्य से विमुख हो जाता है। यह देखना निराशाजनक है कि कानून के प्रशासक अपने द्वारा गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों से कैसे निपटते हैं। पुलिस को कानून लागू करना चाहिए और उसका पालन भी करना चाहिए, लेकिन यहां उन्होंने न केवल संवैधानिक संरक्षण की अवहेलना की, बल्कि मानवता के सार के खिलाफ अपराध के रूप में वर्णित किया जा सकता है। मैं न्यायमूर्ति पीएन भगवती के इस कथन से सहमत हूं कि ''गरीबों और अशिक्षितों को न्यायालयों में जाने में सक्षम होना चाहिए और उनकी अज्ञानता और गरीबी न्यायालयों से न्याय प्राप्त करने के रास्ते में बाधा नहीं बननी चाहिए।'' भागलपुर ब्लाइंडिंग केस ने आपराधिक न्यायशास्त्र का इतिहास बना दिया था, यह पहला मामला था जिसमें भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने बुनियादी मानवाधिकारों के उल्लंघन के लिए मुआवजे का आदेश दिया था।

परमानंद कटारा बनाम भारत संघ और अन्य 1989[4]

इस मामले ने भारत में आपातकालीन चिकित्सा देखभाल के दायरे और न्यायशास्त्र को बढ़ा दिया है। यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा सुनाया गया एक ऐतिहासिक निर्णय है, जिसने सार्वजनिक और निजी दोनों तरह के डॉक्टरों या अस्पतालों के लिए सड़क दुर्घटना के पीड़ित को तत्काल चिकित्सा सहायता प्रदान करना अनिवार्य बना दिया है।

"यह एक मेडिको लीगल मामला लगता है" जैसे लचर बहाने अब और नहीं रहेंगेय मरीज को सरकारी अस्पताल ले जाओ। इस निर्णय को जनहित याचिका के सर्वोत्तम परिणामों/उपलब्धियों में से एक के रूप में देखा जाता है।

याचिकाकर्ता, जो खुद को मानवाधिकार कार्यकर्ता होने का दावा करता है, ने एक तेज रफ्तार कार की चपेट में आने से एक स्कूटर चालक की मौत के संबंध में एक अखबार की रिपोर्ट के आधार पर जनहित में यह रिट याचिका दायर की। रिपोर्ट में आगे कहा गया है कि घायल व्यक्ति को नजदीकी अस्पताल ले जाया गया लेकिन वहां डॉक्टरों ने उसे देखने से इनकार कर दियाय उन्होंने बताया कि उसे लगभग 20 किलोमीटर दूर स्थित दूसरे अस्पताल में ले जाया जाना चाहिए, जो मेडिको–लीगल मामलों को संभालने के लिए अधिकृत था। दूसरे अस्पताल ले जाते समय स्कूटर सवार की मौत हो गई।

प्रावधानः

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 21, चिकित्सा आचार संहिता, 1970 का खंड 12 और खंड 13 मुद्दाः क्या किसी व्यक्ति को दुर्घटना के मामलों में अस्पताल अधिकारियों द्वारा पीड़ित को चिकित्सा प्रदान करने से पहले कई कानूनी औपचारिकताओं का पालन किए बिना उपचार की अनुमति दी जा सकती है। याचिकाकर्ता ने भारत संघ को निर्देश जारी करने की प्रार्थना की है कि इलाज के लिए लाए गए प्रत्येक घायल नागरिक को जीवन बचाने के लिए तुरंत चिकित्सा सहायता दी जानी चाहिए और उसके बाद लापरवाही से बचने के लिए प्रक्रियात्मक आपराधिक कानून को लागू करने की अनुमति दी जानी चाहिए। मृत्यु, और ऐसे निर्देश के उल्लंघन की स्थिति में, लापरवाही के लिए की जाने वाली किसी भी कार्रवाई के अलावा, उचित मुआवजा स्वीकार्य होना चाहिए।

चिकित्सा आचार संहिता, 1970 के खंड 12 और खंड 13 डॉक्टरों और चिकित्सकों पर लगाए गए कर्तव्य का प्रतिनिधित्व करते हैं कि वे अपने पेशेवर कर्तव्य को निभाने से खुद को बचाए बिना घायलों की सर्वोत्तम सेवा करें और उनका इलाज करें। खंड 13 का एक विस्तृत वाचन आगे बताता है कि यह आपातकालीन मामलों से निपटने के दौरान देखभाल और कौशल की समान डिग्री स्थापित करने के लिए चिकित्सकों द्वारा जानबूझकर की

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 03, Issue 03, March 2024

गई लापरवाही पर सख्ती से रोक लगाता है, जो स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि यहां तक कि मेडिकल काउंसिल को भी चिकित्सकों से पेशेवर अपेक्षाएं हैं।

1970 की संहिता के विपरीत, सीआरपीसी, भारतीय दंड संहिता या मोटर वाहन अधिनियम सहित अन्य कानून औपचारिकताएं पूरी करने से पहले चिकित्सा उपचार प्रदान करने पर प्रतिबंध नहीं लगाते हैं। मानव जीवन निस्संदेह पहले औपचारिकताओं को पूरा करने को प्राथमिकता देने की तुलना में अधिक मूल्यवान है और इसे सुनिश्चित करने के लिए, घायलों को तत्काल चिकित्सा देखभाल और राहत प्रदान करने में सक्षम होने के लिए आवश्यक संशोधन जल्द ही लागू करने होंगे।

उत्तरदाताओं का तर्क याचिकाकर्ता के समान ही था, हालांकि, उनके द्वारा शामिल किए गए कानूनी पहलुओं और उपायों को कवर करने के लिए अधिक इनपुट था। यह तर्क दिया गया कि इस प्रक्रिया में बाधा पीड़ित को उपचार देने से पहले एक पुलिस अधिकारी की उपस्थिति में सभी आवश्यक कानूनी औपचारिकताओं को पूरा करने की वैधानिक आवश्यकताओं के कारण होती है। उत्तरदाताओं में से एक, भारतीय चिकित्सा परिषद ने चिकित्सा आचार संहिता, 1970 के दो प्रासंगिक खंड उठाए, जो डॉक्टरों और चिकित्सकों पर अपनी पेशेवर सेवाएं प्रदान करने के लिए कर्तव्य और दायित्व लगाते हैं।

उत्तरदाताओं द्वारा प्रस्तुत दो प्रासंगिक खंडों पर नीचे चर्चा की गई है:

1970 कोड के खंड 10 में कहा गया है कि एक चिकित्सक प्रत्येक बीमार व्यक्ति का इलाज करने के लिए बाध्य नहीं है। हालाँकि, सड़क दुर्घटनाओं के शिकार लोगों जैसी आपातकालीन स्थितियों में, एक व्यवसायी का यह दायित्व होगा कि वह जरूरत के समय प्रतिक्रिया देने और अपनी सेवा प्रदान करने के लिए तैयार रहे। दूसरी ओर, संहिता के खंड 13 में प्रावधान है कि आपातकालीन स्थिति को छोड़कर, चिकित्सकों को यह चुनने की स्वतंत्रता उपलब्ध होगी कि किसे सेवा देनी है। इसमें आगे यह भी कहा गया है कि एक चिकित्सक को किसी का इलाज करने या उसकी देखभाल करने से खुद को पीछे नहीं हटाना चाहिए और जानबूझकर लापरवाही करने पर रोक लगानी चाहिए।

याचिका के आधार पर, सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि संविधान का अनुच्छेद 21 जीवन को संरक्षित करने का कर्तव्य राज्य पर डालता है।इसमें कोई दो राय नहीं हो सकती कि मानव जीवन का संरक्षण सर्वोपरि है। एक बार जीवन खो जाने के बाद, इसे बहाल नहीं किया जा सकता क्योंकि पुनरुत्थान मनुष्य की क्षमता से परे है। प्रत्येक डॉक्टर, चाहे वह सरकारी अस्पताल में हो या अन्यथा, जीवन की रक्षा के लिए उचित विशेषज्ञता के साथ अपनी सेवाएं प्रदान करना पेशेवर दायित्व है। किसी चिकित्सा पेशेवर के लिए कोई कानूनी बाधा नहीं है जब उसे किसी घायल व्यक्ति की तुरंत चिकित्सा सहायता की आवश्यकता के लिए बुलाया या अनुरोध किया जाता है। इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि व्यक्ति को बचाने का प्रयास न केवल चिकित्सा पेशेवर के लिए बल्कि पुलिस या किसी अन्य नागरिक के लिए भी सर्वोच्च प्राथमिकता होनी चाहिए जो इस मामले से जुड़ा हो या जिसने ऐसी किसी घटना या घटना को नोटिस किया हो। वकीलों, न्यायाधीशों और संबंधित सभी लोगों को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि चिकित्सा पेशे से जुड़े किसी व्यक्ति को पूछताछ या किसी अन्य औपचारिकता के लिए अनावश्यक रूप से परेशान नहीं किया जाना चाहिए और पुलिस स्टेशन में जांच के दौरान उसे घसीटा नहीं जाना चाहिए। जहां तक संभव हो इससे बचना चाहिए। रोगी चाहे वह एक निर्दोष व्यक्ति हो या समाज के कानूनों के तहत सजा के लिए उत्तरदायी अपराधी हो, यह उन लोगों का दायित्व है जो समुदाय के स्वास्थ्य के प्रभारी हैं कि वे जीवन की रक्षा करें ताकि निर्दोष की रक्षा हो सके और दोषी की रक्षा हो सके। सामाजिक कानून लापरवाही से मृत्यु को कानूनी दंड के बराबर नहीं मानते।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 03, Issue 03, March 2024

प्रत्येक डॉक्टर, चाहे वह सरकारी अस्पताल में हो या अन्यथा, उसका पेशेवर दायित्व है कि वह जीवन की रक्षा के लिए उचित विशेषज्ञता के साथ अपनी सेवाएं प्रदान करे।

चिकित्सा पेशे के सदस्यों पर डाले गए सर्वोपरि दायित्व के निर्वहन से बचने विलंब करने के लिए कोई भी कानून या राज्य कार्रवाई हस्तक्षेप नहीं कर सकती है। दायित्व पूर्ण और सर्वोपरि है, प्रक्रिया के कानून चाहे कानून में हों या अन्यथा, जो इस दायित्व के निर्वहन में हस्तक्षेप करेंगे, कायम नहीं रह सकते हैं और इसलिए, रास्ता देना होगा। कोर्ट ने इस मामले में फैसले का राष्ट्रीय मीडिया, दूरदर्शन और ऑल इंडिया रेडियो के साथ–साथ उच्च न्यायालयों और सत्र न्यायाधीशों के माध्यम से पर्याप्त प्रचार करने के निर्देश दिए।

संविधान का अनुच्छेद 21 राज्य पर जीवन के संरक्षण का दायित्व डालता है। इस न्यायालय द्वारा कई निर्णयों में बताए गए प्रावधानों पर धीरे–धीरे जोर देकर उस स्थिति पर जोर दिया गया है और दोहराया गया है। इसलिए, इस राज्य दायित्व को पूरा करने के लिए तैनात सरकारी अस्पताल में एक डॉक्टर जीवन के संरक्षण के लिए चिकित्सा सहायता प्रदान करने के लिए कर्तव्यबद्ध है।

डीके बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य 1997[5]

डीके बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य मामले को व्यापक रूप से आपराधिक न्यायशास्त्र में एक मील का पत्थर माना जाता है। डीके बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य मामले में स्थापित दिशानिर्देशों को बाद में 1 नवंबर, 2010 से प्रभावी आपराधिक प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2008 के माध्यम से आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 में एकीकृत किया गया।

डीके बसु मामले से पहले, हिरासत में हिंसा और मौतें असामान्य नहीं थीं और हालांकि कभी–कभार मुआवजा दिया जाता था, लेकिन ऐसी घटनाओं के लिए पार्टियों को जिम्मेदार ठहराने के लिए कोई विशेष प्रावधान या नियम नहीं थे। यह मामला हिरासत में होने वाली मौतों और हिंसा के गंभीर मुद्दे के समाधान के लिए एक महत्वपूर्ण प्रतिक्रिया के रूप में उभरा। इसने हिरासत में अपने कार्यों के लिए पुलिस को उत्तरदायी ठहराने की शुरुआत की। हालाँकि इस मामले के बाद हिरासत में होने वाली मौतों और हिंसा में कमी आई है, लेकिन ये मुद्दे पूरी तरह से खत्म नहीं हुए हैं। मामले में उल्लिखित कुछ दिशानिर्देश वास्तविकता में लगातार लागू प्रथाओं के बजाय कागज पर सैद्धांतिक नियम अधिक बने हुए हैं।और गिरफ्तार व्यक्ति को एक प्रति प्रदान की जानी चाहिए। गिरफ्तार व्यक्ति को हिरासत के दौरान हर 48 घंटे में एक योग्य डॉक्टर से मेडिकल जांच करानी चाहिए। ये डॉक्टर संबंधित राज्य या केंद्र शासित प्रदेश में स्वास्थ्य सेवा निदेशक द्वारा नियुक्त अनुमोदित डॉक्टरों के पैनल में होने चाहिए। सभी तहसीलों एवं जिलों के लिए ऐसा पैनल तैयार किया जाए। गिरफ्तारी के ज्ञापन सहित सभी दस्तावेजों की प्रतियां, उनके रिकॉर्ड के लिए मजिस्ट्रेट को भेजी जानी चाहिए। गिरफ्तार व्यक्ति को पूछताछ के दौरान अपने वकील से मिलने की अनुमति दी जा सकती है, हालांकि पूरी प्रक्रिया के दौरान यह जरूरी नहीं है। सभी जिला एवं राज्य मुख्यालयों पर पुलिस नियंत्रण कक्ष स्थापित किये जायें। गिरफ्तारी के प्रभारी अधिकारी को गिरफ्तारी के 12 घंटे के भीतर गिरफ्तारी और गिरफ्तार व्यक्ति की हिरासत की जगह के बारे में नियंत्रण कक्ष को जानकारी देनी होगी। यह जानकारी नियंत्रण कक्ष के दृश्यमान नोटिस बोर्ड पर प्रदर्शित की जानी चाहिए। डीके बसु मामला भारतीय आपराधिक न्यायशास्त्र में एक मील का पत्थर है। इसने पुलिस हिरासत में व्यक्तियों के अधिकारों और सम्मान की रक्षा के लिए दिशानिर्देश स्थापित किए। सुप्रीम कोर्ट ने पुलिस अधिकारियों की दृश्यमान पहचान, गिरफ्तारी मेमो तैयार करने और बंदी के किसी मित्र या रिश्तेदार को उसकी गिरफ्तारी के बारे में सूचित करने के अधिकार की आवश्यकता पर जोर दिया।

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 03, Issue 03, March 2024

डीके बसु बनाम पश्चिम बंगाल राज्य मामले के कारण 2008 में आपराधिक प्रक्रिया संहिता में इन दिशानिर्देशों को शामिल किया गया। हालांकि इससे हिरासत में होने वाली मौतों और हिंसा को कम करने में मदद मिली है, लेकिन प्रवर्तन में चुनौतियां बनी हुई हैं, जिससे यह सुनिश्चित करना आवश्यक हो गया है कि ये सुरक्षा उपाय लगातार लागू किए जाएं। हिरासत में मौजूद लोगों के अधिकारों और कल्याण की रक्षा करना।

सुप्रीम कोर्ट ने कैदियों के लिए मतदान के अधिकार की मांग करने वाली जनहित याचिका पर केंद्र, चुनाव आयोग को नोटिस जारी किया।[6]

सुप्रीम कोर्ट ने सोमवार को लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 62(5) को चुनौती देने वाली एक जनहित याचिका पर केंद्र और चुनाव आयोग (ईसी) को नोटिस जारी किया, जो कैदियों को वोट देने के अधिकार से वंचित करती है।याचिका में यह निर्देश देने की मांग की गई है कि जन प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 62(5) को अनुच्छेद 14 के तहत समानता के मौलिक अधिकार और अनुच्छेद 326 के तहत वोट देने के संवैधानिक अधिकार का उल्लंघन करने के कारण संविधान के दायरे से बाहर माना जाए। और इसलिए संविधान के अनुरूप होने को सुनिश्चित करने के लिए इसे पढ़ें। इसमें भारत के चुनाव आयोग को कैदियों को वोट देने के अधिकार को प्रभावी बनाने के लिए सभी आवश्यक कदम उठाने का निर्देश देने की मांग की गई है।

मुख्य न्यायाधीश यू.यू.ललित की अध्यक्षता वाली पीठ और न्यायमूर्ति एस. रवींद्र भट और न्यायमूर्ति बेला एम. त्रिवेदी की खंडपीठ ने वकील जोहेब हुसैन की दलीलों पर विचार किया और गृह मंत्रालय (एमएचए) और चुनाव पैनल से जवाब मांगा।

यह याचिका 2019 में नेशनल लॉ यूनिवर्सिटी के छात्र आदित्य प्रसन्न भट्टाचार्य द्वारा दायर की गई थी, जिसमें जन प्रतिनिधित्व अधिनियम 1951 की धारा 62(5) की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी गई थी। याचिका में तर्क दिया गया कि यह प्रावधान, व्यक्तियों को मताधिकार से वंचित करने के लिए जेल में कैद करने के पैमाने का उपयोग करता है और यह, अत्यधिक व्यापक भाषा के उपयोग के साथ, इस प्रावधान के कारण कई विसंगतिपूर्ण और चौंकाने वाले परिणाम उत्पन्न करता है। याचिका में कहा गया। "उन दोषियों के अलावा, जिन्हें कारावास की एक विशेष अवधि की सजा सुनाई गई है, यहां तक कि विचाराधीन कैदी भी, जिनकी बेगुनाही या अपराध निर्णायक रूप से निर्धारित नहीं किया गया है, वोट देने के अधिकार से वंचित हैं, क्योंकि वे भी जेल में कैद हैं, हालांकि उन्हें कारावास की सजा नहीं दी गई,'' दलीलें सुनने के बाद शीर्ष अदालत ने मामले की अगली सुनवाई 29 दिसंबर को तय की।याचिका में तर्क दिया गया कि प्रावधान द्वारा उपयोग की जाने वाली अत्यधिक व्यापक भाषा के कारण, सिविल जेल में बंद लोग भी वोट देने के अधिकार से वंचित हैं। इसमें कहा गया है, इस प्रकार, कारावास के उद्देश्य के आधार पर कोई उचित वर्गीकरण नहीं है।

याचिका में कहा गया "आक्षेपित प्रावधान पूर्ण प्रतिबंध की प्रकृति में काम करता है, क्योंकि इसमें किए गए अपराध की प्रकृति या सजा की अवधि के आधार पर किसी भी प्रकार के उचित वर्गीकरण का अभाव है दक्षिण अफ्रीका, यूनाइटेड किंगडम, फ्रांस जर्मनी, ग्रीस, कनाडा जैसे कई अन्य न्यायालयों के विपरीत वर्गीकरण की यह कमी अनुच्छेद 14 के तहत समानता के मौलिक अधिकार के लिए अभिशाप है।

सन्दर्भ

1. AIR 1979 SCC 1369
2. AIR 1980 SCC 1579
3. AIR 1981 SCC 102

eISSN 2583-6986
IDEALISTIC JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN PROGRESSIVE SPECTRUMS (IJARPS)
A MONTHLY, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) INTERNATIONAL JOURNAL
Vol. 03, Issue 03, March 2024

4. AIR 1989 2039
5. AIR 1997 SCC 642
6. www.Jagran .com